REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

'महासमर के विशिष्ठ सन्दर्भ में परम्परा बनाम आधुनिकता'

मंजू अरोरा
अनुसंधित्सु-कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाडा, पंजाब.
प्राचार्या-सीनियर सेकेंडरी स्कूल, जालंधर,पंजाब.

सारांश (Abstract) :

भारतीय मानस-मूल्य स्त्रोत के दो आयाम हैं- एक रामायण दूसरा महाभारत | जीवन की सारी सांसारिक, अध्यात्मिक, मौलिक, नैतिक और जीवन उपयोगी संभावनाओं को अपने में समेटे ये ग्रन्थ जीवन की परतों को मानव और समाज के सामने उधेड़ते जातें हैं| हम क्या हैं- अर्थात यथार्थ | और क्या होना चाहिए - अर्थात आदर्श | यही तो प्रश्न है न जीवन का ! यही तो जिज्ञासा है,उत्कंठा है, मानव मन की | और यही प्रश्न लेकर डॉ. नरेंद्र कोहली ने महाभारत की कथा को आधार बना कर 'महासमर' महा उपन्यास की रचना की | जिसमें बाहर के समर के साथ साथ अंदर का महाभारत भी मनोवैज्ञानिक रूप से उजागर होता है| जिसमें बात है युगों से मान्य संस्कृति की, हमारी परम्पराओं की | जिसे किसी भी युग में नाकारा नहीं जा सकता |

प्रस्तुत लेख में संस्कृति बनाम परम्परा भी इसी सन्दर्भ में विवेचित करने का प्रयास किया है| जिन मान्यताओं के अनुरूप हम जीवन के व्यवहारों को अपनाते जाते हैं, वही समयानुसार यदि समाज के लिए कल्याणकारी होते हैं तो सिद्धांतों और मूल्यों में परिवर्तित होते जातें हैं| जिन्हें व्यवहृत करता मानव उसे परम्परा का रूप मान लेता है|

जिस दुनिया में हम रहते हैं वह जड़ और चेतन का संगम है | अनेक प्राणी और पक्षी इसे अस्तित्व देते हैं | हमारे पूर्वज भी अन्य प्राणियों की तरह, एक प्राणी ही थे | परन्तु अन्य प्राणियों से उनकी शरीर रचना पृथक होने के कारण उसका भिन्न होना, उसके गतिमान होने और विकासमय होने का कारण बना| अत: अपने नैसर्गिक रूप से बाहर आकर न केवल प्राणी अपने समाज के निर्माण का कारण बना| वरन उसके विवेक ने रची, अपनी सभ्यता और अपनी संस्कृति |

जिस विवेक ने उसे सभ्य बनाया उसी ने उसे कई मूल्यों से भी परिचित कराया, जो कालांतर में पारम्परिक रूप से उसके जीने के सिद्धांत बने और कभी परम्परा और कभी संस्कृति कहलाये |

बीज शब्द (key words): परम्परा, आधुनिकता, संस्कृति, गतिशीलता, स्वार्थ, परमार्थ, परिकल्पना, मान्यताएं, जागरूकता, अपसंस्कृति, विश्लेषण, अनुशासन, यथार्थ, अनैतिकता, तीव्रगामी, परिवर्तन |

भूमिका (Introduction):

राष्ट्रकवि दिनकर कहतें हैं कि, "असल में संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है , जिसमें हम जन्म लेते हैं|"[१] और यही तरीके धीरे-धीरे परम्पराओं में परिवर्तित हो जाते हैं|

मानव की बुद्धि की गतिशीलता ने, उसकी व्यग्रता ने उसके जीवन को, सृष्टि से रूबरू कराया | और अब वह आवश्यकता और मन मुताबिक जीने के लिए साधन और नियम बनाने लगा | यहीं से शुरू हुआ स्वार्थ और परमार्थ का व्यवहार| एक दूसरे की सहायता, इन्सान-इन्सान के बीच का अनुशासन, कार्य वितरण, कार्य व्यवहार और संस्कृति की परिकल्पना और उसका यथार्थ रूप |

स्पष्ट है कि आवश्यकता के कारण व्यक्ति केवल इकाई होकर नहीं जी सकता, फलस्वरूप उसे उन सभी नियमों की

पालना करना पड़ती है, जो उसकी परम्परागत सामाजिक मान्यताओं के अनुसार हो | सामान्यत: हम सभी जानते हैं कि संस्कार हमारे होने की पहचान है| बिना मूल्य और संस्कार के हम न तो अपने घर के रहेंगे न ही किसी और जगत के| तो इस जागरूगता के लिए समाज में आज क्या परिदृश्य है ? कैसा मानवीय एवं सामाजिक व्यवहार प्रचलन में है ? किस प्रकार की मान्यताएं आज के सामाजिक और व्यैक्तिक व्यवहारों में व्यवहृत हैं ? बदलाव की हवा किन परम्पराओं को हमारे व्यवहार पटल से धूमिल कर रही है ? किन नयी चेष्ठाओं की ओर मानव अग्रसर हो रहा है ? जिस संस्कृति और परम्परा की बात की जाती है, उसमें कौन से बदलाव स्वीकार किये जाने का आग्रह है? कुछ बदलाव समय को और जनमानस को बहुत प्रभावित करते हैं | और कुछ लोग इन बदलावों को अपसंस्कृति और अनैतिकता मान लेते हैं| आधुनिकता और परिवर्तन के नाम पर अनुशासनहीनता और उच्छ्रंखलता अपसंस्कृति का ही तो दूसरा चेहरा है| जीवन की तीव्रगामी गति ने जीवन शैली और मूल्यों को बहुत प्रभाव में लिया है | जो परिवर्तन पहले सैकड़ो वर्षों में दृश्य होता था, आज दशकों में ही प्राप्त है | लेकिन आँखें मूँद के परिवर्तन को आत्मसात करना, न तो उचित है, न ही आधुनिकता की पहचान | कई बार एक परिवर्तन जो पहले सुखद होता है, वही बाद में दुष्परिणामों का कारण बनता है | भूलना नही चाहिए कि एक विवेकशील प्राणी से विश्लेष्णात्मक दृष्टि की आशा की जाती है | तभी वह समाजुपयोगी निर्णय करने के योग्य हो सकता है|

विश्लेषण (Explanation):

हमारी युगों से चली आती संस्कृति बहुत धनवान है| लेकिन अब प्रश्न यह है कि समाज के सभी लोग इस संस्कृति और परम्परा के प्रति कैसा दृष्टिकोण रखतें हैं ? क्या सबको वह समय से चली आ रही नीति-निर्देशक सांस्कृतिक परम्पराएँ मान्य हैं ? विडंबना यह है कि बदलते परिवेश में व्यक्ति के स्वार्थ उसे मान्य नियमों से कहीं दूर कर रहे हैं| ऐसा क्यों है ? वर्तमान क्या कहता है ? बानगी देखें ! सुबह सवेरे समाचारपत्र के पन्ने हमें किस संस्कृति की परिभाषा पढ़ा रहे हैं? कल्पना कीजिये सुबह की चाय को हाथ में थाम के हम क्या पढ़तें हैं, 'संपत्ति के लिए पुत्र ने की, पिता की हत्या?', 'नशे की धुन में, पुत्र और भतीजे ने की, वृद्ध माँ की कुल्हाड़ी मार कर हत्या', भीड़ भरे बाज़ार में बम के धमाकों ने ली ५० लोगों की जान' | चौंके नहीं न ! बिलकुल ! यह सब समाचार ही तो हमारी दिनचर्या का आरंभ करते हैं | जिन घटनाओं से मनुष्य का परिचय बहुत कम था वह अपराध और हिंसा आज उसको उद्वेलित नहीं करती | जैसे उसने इस सबको बिना उत्तेजना के स्वीकार ही कर लिया हो| अब आगे देखें- इससे भी बढकर है- दिन भर चलते दूरदर्शन के विभिन्न चैनल| इन पर दीखते दृश्य हमें किस दुनिया की परम्पराओं की ओर इंगित कर रहे हैं ? जिन्हें सारा दिन बिना उद्देश्य के अपना मनोरंजन समझ कर देखा करते हैं | क्या वास्तव में उनका कोई उद्देश्य है भी ? क्या कोई रास्ता दिख रहा है इनसे ? सनसनी, वारदात नाम से रोमांच रचकर अपराधी जगत का चित्रपट हैं यह दूरदर्शन के दृश्य | घटना प्रधान सीरियल जो आज परोस रहे हैं, वह न तो हमारी संस्कृति के अनुरूप है न किसी भी तरह समाज को कल्याण का मार्ग दिखातें है| फिर इन पर रोक क्यों नहीं ? क्या हो रहा है समाज में ? कहाँ है समाज का बुद्धिजीवी और उसका विवेक ? इस सुप्तावस्था का दोष किसे दिया जाना चाहिए ? क्यूँ हम इतने संवेदनहीन हो गये हैं| अपने समाज के सर्व-मान्य परम्परिक मूल्यों की न व्याख्या ही समझते हैं और न ही उन्हें अपने आचरण में सम्मिलित करने का प्रयास करते हैं| एक काल ऐसा था जब देखा-देखी ही सही परम्पराओं का अपने आचरण में सम्मिलन व्यक्ति की प्राथमिकता होती थी | हाँ ! यह सही है कि व्यक्ति की व्यक्तिगत विचारधारा ने उसे थोडा समाज की मान्य धारा से पृथक कर दिया है| अहम् और स्वार्थ के रहते व्यक्ति समष्टि की नहीं अपितु व्यक्तिगत हितों की बात को अधिक प्रश्रय देने लगा है | और इस प्राथमिकता ने संस्कृति और परम्परा को कुछ कशमकश में डाल दिया है| जिन परम्पराओं के बल पर टिका सामाजिक व्यवहार व्यक्ति को अपनी एक सामूहिक, सामुदायिक पहचान देता था, वह कहीं खो सा गया है | इसलिए संस्कृति की बनावट में अन्य संस्कृतियों ने सेंध लगा ली है|

लेकिन संस्कृति इतनी दुर्बल नहीं| कहना न होगा, हमारे अतीत ने हमें जो अमूल्य सांस्कृतिक विरासत दी है, उसका जिक्र करते हुए प्रत्येक भारतीय आज भी गरिमा से भर उठता है | लेकिन जब हम इसके क्रियात्मक रूप को देखते हैं तो– कर्म-क्षेत्र में इस गरिमा का प्रदर्शन कुछ दुर्लभ होता जा रहा है?

हमारी संस्कृति एक रूप दिखाती है-श्री राम का, जो पिता माता की आज्ञा को शिरोधार्य कर वन को चल देते हैं | जो विश्व के कल्याण के लिए स्वयं को तिरोहित कर देना चाहते हैं | जो मर्यादा का अनुकरणीय उदाहरण हैं | जिस पर हमारे विश्वास और धर्म सम्बन्धी कार्य भी संबल पाते हैं बल्कि कहें कि हमारे धार्मिक विश्वास टिके हैं| दूसरा रूप है- महाभारत के पितामह भीष्म का जो अपने पिता की मनोकामना पूर्ण करने हेतु अपने जीवन की समस्त इच्छाओंआकांक्षाओं का गला घोंटते समय एक बार विचार नही करते और प्रतिज्ञा के रूप में स्वयं को कठोर अनुशासन में बांध लेते हैं| अपने यौवन की समस्त इच्छाओं की बलि ? क्या आज का युवा यह त्याग कर सकता है ? दिखती है ऐसी उदार त्याग भावना ? बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न है

!! ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसी कल्पना भी मुमकिन नही है, क्यों ? यहीं एक उदाहरण ज्येष्ठ पांडव युधिष्ठिर का भी है जो पिता नही वरन पितृत्व (धृतराष्ट्र) को ही पिता मान कर धर्म स्वरुप उनकी प्रत्येक आज्ञा को मानना अपना कर्तव्य समझते हैं।[२] यह जानते हुए भी कि उनके प्रति षडयंत्र किया जा रहा है, उनका सर्वस्व हरण किया जाना है, वह अपने धर्म के मार्ग पर टिके रहते हैं | धर्म क्या है और उसका पालन क्या ? क्या वर्तमान, आज के युवा को यह सब सोचने की अनुमति नहीं प्रदान करता है ? कहने को तो महाराज धृतराष्ट्र का उदाहरण भी है जो अन्याय की ओर होते हुए भी अपने पुत्र का हित साधने को हर संभव प्रयास करता है | और वहीँ उनका पुत्र है दुर्योधन जो पिता की स्थिति का पूरा फल और लाभ लेने को तत्पर है चाहे उसके लिए उसे किसी भी अन्याय को क्यों न करना पड़े | मनुष्य किस उदाहरण से सीखते है यह उसके आत्मचेतन और चेतना से निर्देशित होता है | अब वर्तमान का एक उदाहरण उतरप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव का ले जिन्होंने अपने पिता का रचित राजनैतिक दल अपने कब्जे में करने में कोई कसर नही छोड़ी, और उसके लिए गृह- कलह सड़क पर आई पर उसमे उन्होंने कोई गुरेज़ नहीं की | भारत के ही भुतपूर्व प्रधानमंत्री नरसिंहराव जब शासनासीन थे उस समय हुए यूरिया घोटाले में उनके पुत्र का नाम आया, तो उस आरोप को उन्होंने सिरे से ही नकार दिया | यानि व्यक्ति कितने भी बड़े पद पर आसीन हो जाये उसका स्वार्थ उसे उसकी संस्कृति से दूर करता ही है| भारत के ही तो परिदृश्य है यह ! बदलता परिवेश ! कभी मूल्य आधारित कभी स्वार्थ आधारित | पर इनका सार क्या है ? कहाँ खड़ा है आज का भारतीय मनुज?

हाँ ! यह सही है कि आज के तकनीकी युग में जहाँ मनुष्य की सीमायें उसे पूरे विश्व का भ्रमण करवा रही हैं जहाँ संस्कृतियों का अंतर्संबंध उसे अपनी-बेगानी की समझ करने की सम्भावना से ही दूर कर रहा है तो ऐसे वातावरण में संस्कृति के मायने कुछ बदलते से हो जाते हैं | अपने निजी सम्बन्धियों से दूर व्यक्ति जब अपने जीवन के विस्तार के लिए बाहर निकलता है, तो वह इन बन्धनों से स्वयं को मुक्त करना चाहता है| वह अपने को ऐसे संसार में पाता है जहाँ वह अपने विकास अपनी उन्नति के बारे में संवेदनशील है| जहाँ उसे किसी की हानि से मतलब नहीं है तो वह किसी के लाभ के लिए भी अधिक प्रत्यनशील नहीं |

इस सबके बावजूद किसी भी देश, स्थान, समूह, समुदाय, संस्था की पहचान उसकी संस्कृति और परम्परा से ही होती है, उसे पूर्णतः नाकारा नही जा सकता | राजनैतिक विश्लेषक योगेन्द्र यादव मानते हैं कि 'भारत का जन मानस परम्परा और आधुनिकता के बीच असमंजस की स्थिति में जी रहा है | इसमें न तो परम्परा का सयंम है न आधुनिकता का तेज़ |'[३] तो वह क्या है जो वर्तमान जनमानस को न तो परम्परा वादी होने दे रहा है न आधुनिक|

मनुष्य लगातार बदल रहा है | संस्कृति भी मनुष्य द्वारा निर्मित है, अतः वह भी बदल रही है | इस बदलाव को स्वीकार करना पड़ेगा | परन्तु ध्यान रहे-नए मूल्यों को स्वीकार करें, लेकिन यह भी देखें कि इस बदलते रूप में समाज के कल्याण का ध्यान सम्मिलित है या सिर्फ स्वार्थ वादी सोच द्वारा संचालित परम्परा को ही अपनाया जा रहा है|

महाकवि कालिदास का एक श्लोक है ,
"पुराणमित्येव न साधू संवर न चापि काव्यं नवमित्यवधम|
संतः परीक्ष्यान्त्रद भंजते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ||"[४]

इसका अर्थ यह है कि जो पुराना है, वह सभी उत्तम और उपयोगी नहीं है | और जो नया है वह नया होने मात्र से ही त्याज्य अथवा निंदनीय नहीं है | समझदार व्यक्ति उसकी उचित परीक्षा करके ही उसकी ग्राह्य अथवा त्याज्य, उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता स्वीकार करते हैं | जबकि मूढ व्यक्ति अपने विवेक के विपरीत अन्य लोगो के मत पर अवलंबित रहते हैं| समाज में इसी तरह के लोग गलत विरोध के लिए उतरदायी होते है | ऐसे लोग अपने स्वार्थ के अनुसार किसी भी तथ्य को गलत या सही ठहराते हैं | विचारणीय है कि क्या सही है और क्या गलत ! इस का निर्णय किसी एक घटना को आधार बना कर नहीं किया जा सकता |

यदि पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विश्लेषण करें तो हम निष्कर्ष रूप में पायंगे कि हमारी हजारों वर्ष पुरानी परम्परा समृद्ध होते हुए भी कहीं-कहीं आज के परिवेश में प्रासंगिक नहीं है| नए बदलाव को उसकी सम्पूर्णता के साथ स्वीकार करने के लिए उसमे समष्टि के प्रति उदारता के गुण को भी समाहित करना होगा | अच्छे और बुरे में भेद करने और उपयोगी तथा सही चुनने की क्षमता का विकास करना होगा | इसलिए यदि सही में अपनी सांस्कृतिक धरोहर को निभाते हुए आधुनिक बनना है तो ध्यान रखना होगा कि अगर पूर्व में सब कुछ ग्राह्य नही है तो पश्चिम में भी सब त्याज्य और ग्राह्य नहीं है|

उपसंहार (Conclusion):

यदि वास्तव में सुसंस्कृत बनना है तो समाज के बौद्धिक वर्ग को आगे आना होगा| उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि मानव और समाज की सांस्कृतिक जमीन कितनी सुदृढ़ है| कहीं परिस्थितियों के बहाव में वह अपना मूल स्वरूप खो तो नहीं देगी ? आज की पीढ़ी आधुनिक बनते-बनते कहीं अपना मौलिक रूप भूल तो नहीं जायेगी? स्मरण रखना होगा कि यह वह अतीत है, जिसके कारण आज तक हम विश्व में पूज्य एवं पूजनीय की परम्परा का उदाहरण बने हुए हैं जिसे पश्चिम भी अनुकरण करना चाहता है | इसलिए हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है | स्मरण रहे, डॉ.सत्यकेतु के अनुसार, "चिंतन द्वारा अपने को कलामय बनाने के लिए मनुष्य जो यत्न करता है, उसका परिणाम संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है |"[५] यह कोई अलग तथ्य नहीं है, जिसे कल संस्कृति कहा, आज वो परम्परा है, जो आज परम्परा है वह कल आधुनिकता कही जाएगी| यही है महासमर में दर्शाए जीवन का चक्र, उसके मूल्यों की गाथा, जीवन का यथार्थ और जीवन का आदर्श | परम्परा और संस्कृति का अद्‌भुत संयोग है महासमर| फलत: दोनों का नाम पृथक होते हुए भी एक ही सिक्के के दो पहलु हैं संस्कृति बनाम परम्परा | तो अपनी इस सौन्दर्यत्मकता को गवां न पायें | आधुनिकता में उन्नति एवं समृद्धि और संस्कृति में पारम्परिक उत्थान हमारी पहचान रहे | अत: श्रेष्ठ समाज की स्थापना के लिए परम्परा और आधुनिकता का उचित समन्वय अनिवार्य है|

सन्दर्भ (References):

१. श्री रामधारी सिंह दिनकर- संस्कृति के चार अध्याय – पृष्ठ ६५६|
२. डा.नरेन्द्र कोहली- महासमर – खंड ४ धर्म- पृष्ठ ३७८ |
३. डॉ. योगेन्द्र यादव- इन्टरनेट पर उपलब्ध पत्रक|
४. डॉ. सीता राम गुप्ता के पत्र से – (www)hindi.speakingtree.in .
५. डॉ.सत्यकेतु- भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास- पृष्ठ १९ |

मंजू अरोरा
अनुसंधित्सु-कला एवं भाषा विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाडा, पंजाब.
प्राचार्या-सीनियर सेकेंडरी स्कूल, जालंधर,पंजाब.

LBP PUBLICATIONS